भक्ति और रीति काव्य-धाराओं का संवाद और दादूपंथी सुन्दरदास की कविता

Bhakti aur Riti Kavya Dharaon Ka Samvad aur Dadupanthi Sundardas ki Kavita

(A Dialogue of Bhakti and Riti Sensibilities and the Poetry of Dadupanthi Sundardas)

पीएच. डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध Thesis presented for the award of Ph.D. Degree in Hindi



तनुजा मजुभगर शोध निर्देशक प्रोफ़ेसर तनुजा मजुमदार

दलपत सिंह राजपुरोहित (Reg. No. R-14RS01110006)

हिन्दी विभाग प्रेसिडेन्सी विश्वविद्यालय, कोलकाता सन्-2018 ई.

उपसंहार



हिन्दी साहित्य के आरंभिक आधुनिक काल (मध्यकाल) का इतिहास लेखन एक जटिल काम है। इसका कारण यह है कि इस काल में साहित्यिक संवेदनाएँ, भाषाएँ, विधाएँ परस्पर संवाद कर रही थीं। ऐसे में किसी काल खंड का कोई एक नाम न्यायोचित नहीं हो सकता। इसलिए काव्य की विधाओं की निरंतरता और युग सापेक्ष नवाचारों का ऐतिहासिक अध्ययन करना ही उचित होगा। कवि अपनी काव्य विधाओं के चयन के समय उस विधा की परम्परा के प्रति भी सचेत रहा करता था। वह उन विधाओं में युग-सापेक्ष बदलाव भी करता था। साहित्य का इतिहास लिखने के क्रम में काव्य-विधाओं के ऐतिहासिक अध्ययन क क्षेत्र में भी बहुत सम्भावनाएँ हैं, जिसकी और बढ़ने के लिए यह शोध प्रबंध एक छोटा सा प्रयास है।

हिंदी साहित्य में 1800 ई. के पहले का यह काल भाषा, कवि-संवेदना, कविता के सृजन, संरक्षण तथा ग्रहण आदि सभी पहलुओं पर विविध था। उस काल के पठन-पाठन के लिये हमारे इतिहास ग्रंथ निस्संदेह: सशक्त ढाँचा प्रदान करते हैं। परन्तु यह भी विचारणीय है कि कविता और कवि-संवेदना को कालक्रम के ठोस खानों में नहीं बाँधा जा सकता। इसलिए आरंभिक आधुनिक काल में कविता को केवल बंधे-बंधाए कालक्रम में रखकर नहीं पढ़ना चाहिये अपितु यह भी देखना चाहिये कि कविता में परस्पर कितनी संवेदनाएँ मिल रही थीं। आरम्भिक आधुनिक काल की दो बड़ी काव्य-धाराएँ- भक्ति और रीति - वस्तुत: कालक्रमानुसार एक के बाद एक आने वाली काव्य-धाराएँ उतने ठोस अर्थों में नहीं रही हैं जितना इतिहास ग्रंथ समझाते हैं। ये साथ-साथ चलने वाली धाराएँ भी थीं जो एक दूसरे से संवाद भी करती आ रही थीं। इस अवधारणा के भी पुनर्मुल्यांकन की आवश्यकता है, जिसमें यह माना जाता है कि देश के सामंती या अभिजात वर्ग भारत की आरम्भिक आधुनिकता में कोई भूमिका नहीं थी। राजसी अभिजात वर्ग सर्वत्र इकहरा या एक-से चरित्र का कभी नहीं रहा है। भक्तमालों में भक्तों को आश्रय देने वाले राजसी अभिजात वर्ग को भी भक्त-परम्परा का हिस्सा माना गया है। भक्तमालों में ऐसे राजाओं की विस्तृत चर्चा आती है जिन्होंने भक्तों का आदर किया और उन्हें संरक्षण दिया देशी सामंत भी संतों का शिष्यत्व ग्रहण करते थे। सामंती संस्कृति का सबसे अधिक विरोध करने वाली मीराबाई की स्मृति को राजसी वर्ग सदियों से संजोता आया है। दादूदयाल के पहले शिष्य बड़े सुंदरदास (पूर्व नाम भीमराज) बीकानेर के राजा के भाई थे। बीकानेर राजवंश अकबर का सहयोगी था। आमेर राजपरिवार के सदस्य दादू का शिष्यत्व ग्रहण करते थे। सुंदरदास इसीलिए शांतिप्रिय और भक्तों के कार्यकलापों में दखल न देने वाले राज्य की आवश्यकता बताते हैं। दादूपंथी स्रोत इस बात से भरे पड़े हैं कि दादू की अकबर से मुलाक़ात करवाने में आमेर के राजघराने का बड़ा योगदान था। ऐतिहासिक रूप से यह मुलाक़ात सच हो न हो, यह दादूपंथियों को आमेर राजपरिवार से मिली सहायता की तरफ़ इशारा करता है।

आमेर राजपरिवार 16वीं सदी से ही गलता में रामानन्दियों को प्रश्नय देता आ रहा था जहाँ नाभादास ने रहकर अपना प्रसिद्ध भक्तमाल लिखा। आमेर और मुग़ल सहयोग से ही वृंदावन भक्ति के प्रमुख केंद्र के रूप में विकसित हुआ। इसी तरह बुंदेले भक्ति की नई लहर से अछूते नहीं रहे। हरिराम व्यास (जो वृंदावन में बसे एक प्रमुख भक्त थे और उनकी कविता भक्ति-काव्य के ऐतिहासिक अध्ययन में बहुत महत्त्वपूर्ण रही है) को ओरछा में मिला सानिध्य इस बात का प्रमाण है कि बुंदेले राजा भक्त कवियों का बराबर सम्मान करते थे। मुग़लों के सान्निध्य में आए आमेर और बुंदेला दरबारों में हमें शुरूआती रीति कविता मिलती है। इसी तरह मारवाड़ और बीकानेर राज्यों ने देशभाषा डिंगल काव्य के उद्भव और विकास में महती भूमिका निभाई।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जन सामान्य में अपनी पैठ रखने वाले संतों-भक्तों, सम्प्रदायों और पंथों के साथ राजसी अभिजात वर्ग का सहयोग और टकराव वाला सम्बंध था। इस अभिजात वर्ग के भारत की आरम्भिक आधुनिकता या 'देशज आधुनिकता' में योगदान को समझे बिना इस अवधारणा की पूरी तस्वीर नहीं खींच सकते। यह शोध-प्रबंध इस वर्ग की भूमिका को समझने की दिशा में बढ़ाया एक छोटा-सा कदम है। हालाँकि शोध प्रबंध में कुछ ही दरबारों का अध्ययन हो पाया है इसलिए इस क्षेत्र में आगे शोध की और सम्भावनाएँ हैं।

भक्ति और रीति प्रवृत्तियाँ कैसे एक ही कवि के यहाँ मिल जाती हैं उसका प्रमुख उदाहरण सुंदरदास हैं। शोध-प्रबंध में सुंदरदास के काव्य का समग्रता में अध्ययन किया गया है। जिसमें सुंदरदास के जीवन से जुड़े प्रामाणिक स्रोतों, जैसे राघवदास का 'भक्तमाल', जनगोपाल की 'दादू जनम लीला परची', फ़तेहपुर राज्य में मिले शिलालेख, सुंदरदास के पंथ से जुड़े स्थानों से मिले शिलालेख और स्वयं उनकी

कविता की पांडुलिपियों का सहारा लिया गया है। आरम्भिक आधुनिक काल के अध्ययन के लिए पांडुलिपियों की भूमिका पर भी इस शोध-प्रबंध में प्रकाश डाला गया है। सुन्दरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व का समग्रता में अध्ययन करने के लिये 1685 ई. में लिखी उनके काव्य की प्राचीनतम पाण्डुलिपि की सबसे बड़ी भूमिका है। यह पाण्डुलिपि (जैसा कि इसकी पुष्पिका से विदित होता है) स्वयं सुंदरदास ने अपने परलोक गमन के कुछ साल पहले तैयार करवाई थी। इनसे उनके काव्य का प्रामाणिक अध्ययन करने में बड़ी सहायता मिलती है। पांडुलिपि पर आधारित साहित्यिक-संस्कृति की प्रकाशन उद्योगों पर आधारित साहित्यिक संस्कृति (print culture) के साथ तुलना बड़े दिलचस्प तथ्य सामने लाती है। भारत में छापेखाने के आने से जन-समुदाय जो काव्य पढता था उसे उपलब्ध करवाने में प्रकाशन भवनों की अभिरुचियों की भी बड़ी भूमिका होती थी। जो पुस्तकें छपती थी वे ही पाठक-वर्ग के मन में किसी कवि की एक छवि बनाती थीं। सुंदरदास का 'सुन्दरविलास' (या 'सवैया ग्रंथ')--जो अंगों में विभाजित है- अन्य संत कवियों के काव्य की तरह लगता है। बड़े प्रकाशन भवनों के यहाँ 'सुन्दरविलास' ख़ूब छपा (या कहें तो केवल यही ग्रंथ छपा), जिससे सुन्दरदास भी प्रमुखत: एक संत के रूप में जन-मानस में बस गए। प्रकाशन संस्कृति में सुंदरदास के वे ग्रंथ जिनमें वे एक आचार्य, दार्शनिक, कवि-शिक्षक के रूप में हमारे सामने आते हैं--जैसे उनका प्रमुख ग्रंथ 'ज्ञान समुद्र' - वे उतना स्थान नहीं पा सके। प्रकाशन भवन किसी कवि का छवि-निर्माण कैसे करते थे, इस क्षेत्र में और शोध की ज़रूरत बनी हुई है।

आरम्भिक आधुनिक काल के अध्ययन में सबसे ज़्यादा ज़रूरत रचनाओं के अंतरपाठ (intertextual study) की है। यानी रचनाएँ आपस में कैसे जड़ी हुई होती

हैं। रचनाओं के अंतरपाठ से ही हमें यह ज्ञात होता है कि भक्त और रीति कवि भी एक दूसरे से संवाद करते थे। पद, लोक कथाएँ, चरित कथाएँ, भक्तमाल, वार्ता साहित्य, संत-बानियाँ आपसे में एक-दूसरे को कैसे प्रभावित करते थे, इसका ज्ञान भी हमें रचनाओं के अन्तरपाठ से मिलता है। इस शोध-प्रबंध में सुंदरदास के काव्य का केशवदास, रसखान आदि के काव्य के साथ अंतरपाठ इस दिशा में बढ़ाया गया एक क़दम है। इस क्षेत्र में अध्ययन की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं।

आरम्भिक आधुनिक काल के अध्ययन में एक बात जो हमेशा उपेक्षित रही है वह यह है कि कवि-शिक्षा के कौनसे तरीक़े उस युग में प्रचलित थे? रीतिग्रंथों का कवि-शिक्षा में क्या योगदान रहा है? इसी क्रम में सुंदरदास के ग्रंथ 'ज्ञान समुद्र' का अध्ययन किया गया है। 'ज्ञान समुद्र' के पाठक-वर्ग में संत-समुदाय तो था ही, राजसी अभिजात वर्ग भी सम्मिलित था। ऐसे ही संत शिक्षा वाले 'भक्ति के रीतिग्रंथ' अन्य सम्प्रदायों जैसे रामानन्दी, पुष्टिमार्गियों, निरंजनी, रामसनेही आदि के यहाँ भी लिखे जाते थे। इस दृष्टिकोण से भी भक्ति-काव्य का अध्ययन होना चाहिए। सुंदरदास का काव्य हमें इस बात का भी प्रमाण देता है भक्ति-काव्य के द्वारा भी औपचारिक रूप से शिक्षा दी जाती थी। सुंदरदास के ग्रंथ कच्छ राज्य की राजधानी भुज में 18वीं सदी में स्थापित हुई 'ब्रजभाषा पाठशाला' में पढ़ाए जाते थे। 'ब्रजभाषा पाठशाला' के पाठ्यक्रम में मुख्यत रीति-कवि लगे थे, उनमें सुन्दरदास को स्थान मिलना उनकी कविता की उत्तर-भारत से बाहर गुजरात में प्रसिद्धि को दिखाता है। सुन्दरदास ने बनारस में जो शिक्षा अर्जित की, अद्वैत वेदान्त पर संस्कृत में हो रहे विमर्श को देशभाषा में प्रस्तुत किया वह कैसे 'ब्रजभाषा पाठशाला' के माध्यम से अन्य कवियों तक पहुँचा इस पर भी शोध-प्रबन्ध में प्रकाश डाला गया है।

सुंदरदास ने जिस ब्रजभाषा में अपना काव्य लिखा, वह एक छोटे से भौगोलिक क्षेत्र - ब्रज प्रदेश - से निकलकर वृहत्तर उत्तर भारत की काव्यभाषा बनी। यह ब्रजभाषा के लचीलेपन की ओर इशारा करता है। ब्रज को हर कवि अपनी काव्य-विधा, पाठक और श्रोता वर्ग की रुचियों या ठेठ साहित्यक की माँग के अनुरूप बदलता रहता था। सुंदरदास ने भी अपनी काव्यभाषा में बराबर भाषाई प्रयोग किए हैं। वे जब दर्शन या काव्यशास्त्र पर लिखते हैं तो उनकी ब्रजभाषा संस्कृतनिष्ठ हो जाती है और जब सूफ़ियों के मुहावरे में कविता लिखते हैं तो ख़ालिस फ़ारसी और सूफ़ी तकनीकी शब्दावली का प्रयोग करते हैं। उनके 'सवैयों' तथा 'पदावली' में चलती हुई ब्रजभाषा है जिससे ये दोनों ग्रंथ लोकप्रिय बन जाते हैं। वहीं पूरबी, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी आदि के शब्दों का भी संदर्भ और विधा के अनुसार सुन्दरदास भरपूर प्रयोग करते हैं। इससे यह धारणा बलवती होती है कि ब्रजभाषा को कई रूपों में प्रस्तुत करना उस काल में काव्य रचना का प्रतिमान माना जाता था। इसीलिये भिखारीदास ब्रजभाषा को सैद्धांतिक दृष्टि से व्याख्यायित करते हुए ब्रजभाषा में 'षट्-विधि कवित' करने की बात करते हैं। सुंदरदास की काव्यभाषा ब्रजभाषा आधारित बहुआयामी साहित्यिक-संस्कृति की ओर हमारा ध्यान खींचती है और यह सवाल छोड़ जाती है कि क्या उस परम्परा का उत्तरोत्तर विकास हुआ है या वह साहित्यिक परिवेश संकुचित होता जा रहा है?